श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

प्रथम वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सभ्यग्ज्ञान प्रवेशिका) अभ्यास २

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

सौजन्य : अ.सौ. लेखाबेन धनपतिभाई मोमाया - कच्छ बारोई - हाल जलगाँव

सूत्र - विधि और रहस्य

नवकार (श्री पंच - परमेष्ठि नमस्कार सूत्र) (चालू)

-: आचार्य भगवंत के छत्तीस गुण :-

पांच आचार का पालन करें, दूसरों को पालन करने का उपदेश दे और साधु-प्रमुख को पांच प्रकार के आचार दिखाने वाले गच्छ के नायक वो आचार्य भगवंत है ।

आचार्य भगवंत छत्तीस गुणो से युक्त होते हैं, जो निम्न प्रकार से हैं -

पांच इन्द्रियो के नाम ...

१) स्पर्श : चमडी **२) रसना** : जीभ **३) घ्राण** : नासिका **४) चक्षु** : आंख **५) श्रोत** : कान. ये पांच इन्द्रिय के तेवीस विषयो में मनपसंद के उपर राग और नापसंद के उपर द्वेष आचार्य महाराज करते नहीं ।

नव प्रकारकी ब्रम्हचर्य (शीलव्रत) की वाड के नाम :

१) स्त्री, पशु, नपुसंक जहाँ न हो वहाँ वास करें ।
२) स्त्री के साथ, स्त्री संबंधी राग से बातें न करे ।
३) स्त्री जहाँ बैठी हो उस जगह पर पुरुष दो घडी तक बैठे नहीं ।
४) राग से स्त्री के अंगोपांग देखे नहीं ।
५) स्त्री पुरुष जहाँ सोये हो अथवा कामक्रीडा करते हों, वहाँ दिवाल प्रमुख के अंतर से भी रहें नहीं ।
६) पूर्व में की गई कामयोग की क्रीडा को याद करे नहीं ।
७) स्निग्ध-रस कस वाला मादक आहार करे नहीं ।
८) भूख शांत हो इससे ज्यादा नीरस आहार भी न करें ।
९) शरीर की शोभा टाप-टीप करे नहीं ।

उपरोक्त नौ प्रकार की शील व्रत की वाडों को धारण करने वाले

चार प्रकार के कषायों के नाम.....

१) क्रोध २) मान ३) माया ४) लोभ

चार प्रकार के कषाय करे नहीं ।

पांच महाव्रतों के नाम.....

१) प्राणातिपातविरमण : कोई भी जीव की हिंसा न करना ।
२) मृषावादविरमण : चाहे जैसा भी कष्ट आये तो भी असत्य बोलना नहीं ।
३) अदत्तादानविरमण : किसी ने दी न हो ऐसी पराई कोई भी चीज वस्तु लेना नहीं ।
४) मैथुन विरमण : मन,वचन और काया से ब्रम्हचर्य - शील पालना ।
५) परिग्रह विरमण : किसी भी चीज का ममत्व से संग्रह करना नहीं ।

इन पांच महाव्रतों को धारण करने वाले ।

पांच प्रकारके आचारों के नाम .....

१) ज्ञानाचार : जिस क्रिया अथवा नियमो के अनुसरण से परिणाम स्वरुप सम्यकज्ञान की वृद्धि हो ।
२) दर्शनाचार : जिस क्रिया अथवा नियमो के अनुसरण से श्रद्धारुप सम्यकदर्शन की वृद्धि हो ।
३) चारित्राचार : जिस क्रिया अथवा नियमों के अनुसरण से सम्यक चारित्र की वृद्धि हो ।
४) तपाचार : जिस क्रिया अथवा नियमो के अनुसरण से सम्यक तप की वृद्धि हो ।
५) वीर्याचार : संयम के पालन में बल, वीर्य और पराक्रम का संपूर्ण उपयोग करना ।

उपरोक्त सुविहित आचरणो का पालन करें ।

पांच समितीके नाम.....

समिती : सम्यक् प्रवृत्ति

१) इर्या समिति : किसी छोटे जीव को भी आघात त्रास न हो इस तरह कालजी रख कर चलना ।
२) भाषा समिति : निर्वद्य - पाप रहित वचन बोलना ।
३) एषणा समिति : बयालीस दोष रहित ढूंढकर गोचरी लेना ।

४) आदान निक्षेपणा समिति : वस्त्र, पात्र, उपकरणादि जीव हिंसा न हो ऐसी सावधानी से लेना रखना ।
५) पारिष्ठापनिका समिति : मल, मूत्र, श्लेष्म आदि को जीवहिंसा न हो ऐसी सावधानी पूर्वक परठना ।
ये पाँच प्रकार की समिति को पालें ।

तीन गुप्ति के नाम :

गुप्ति - संयम पालन के लिये प्रशस्त ऐसी निवृति याने मन-वचन-काया से उत्पन्न होती असत् प्रवृत्ति को रोकना ।

१) मनोगुप्ति : मन को दुष्ट विचारों में प्रवर्त न होने देना ।
२) वचनगुप्ति : खास जरुरत के बगैर न बोलना ।
३) कायगुप्ति : काया से हो सके उतनी कम प्रवृत्ति करना ।
इन तीन गुप्ति का पालन करें ।

पाँच समिति और तीन गुप्ति मिलकर **''अष्ट प्रवचन माता ''** है ।
इस तरह से और अन्य दूसरी तरह से भी छत्तीस गुण कहे गये है ।

उपाध्याय महाराज और उनके पच्चीस गुणों का स्वरुप :

जिनके समीप निवास करने से श्रुतज्ञान का लाभ होता है वो **उपाध्याय** कहलाते है । श्री जिनेश्वर देवों का कहा हुआ श्रुत, द्वादंशागीरुप ग्यारह अंग और बारह उपांगो का स्वयं को ज्ञान हो तथा दूसरों को पढाये, ये दोनों मिलकर तेवीस तथा १ चरणसितरी (उत्तम चारित्र) तथा १ करणसितरी (उत्तम क्रिया) मिलकर **''उपाध्याय''** के **पच्चीस** गुण निम्न प्रकार से हैं -

११ अंगोके नाम :

१. आचारांग २) सूयगडांग ३) ठाणांग ४) समवायांग ५) भगवती ६) ज्ञाताधर्मकथा ७) उपासकदसांग ८) अंतगड दशांग ९) अनुत्तरोववाई दशांग १०) प्रश्न व्याकरण ११) विपाक सूत्र

बारा उपांग के नाम :

१) उववाईय २) रायपसेणी ३) जीवाजीवाभिगम ४) पन्नवणा ५) जंबुदीव पन्नति ६) सूरपन्नति ७) चंदपन्नति ८) कप्पिया ९) कप्पवंडिसिया १०) पुप्फया ११) पुप्फचूलिया १२) वन्हिदसा

२. सित्तरी :

१) चरण सित्तरी २) करण सित्तरी

इस तरह से और दूसरी तरह से भी पच्चीस गुण होते हैं । जिनमें ग्यारह अंग और चौदह पूर्व के नाम आते हैं ।

साधु महाराज और उनके सत्तावीस गुणों का स्वरुप

जो आत्महित को साधे और परहित को सधावे अथवा सर्वविरतिरुप चारित्र लेकर मोक्ष के अनुष्ठान को साधे वो साधु मुनिराज कहलाते हैं ।

उनके २७ गुण निम्न प्रकार से हैं -

सत्तावीस गुण ...

● प्राणातिपात विरमण ● मृषावाद विरमण ● अदत्तादान विरमण ● मैथुन विरमण ● परिग्रह विरमण ● रात्रिभोजन त्याग ● पृथ्वीकाय रक्षा ● अपकाय रक्षा ● तेउकाय रक्षा ● वाउकायरक्षा ● वनस्पतिकाय रक्षा ● त्रसकाय रक्षा ● स्पर्शेन्द्रिय निग्रह ● रसेन्द्रिय निग्रह ● घ्राणेन्द्रिय निग्रह ● चक्षुइन्द्रिय निग्रह ● श्रोतेन्द्रिय निग्रह ● लोभ का निग्रह ● क्षमाधारण करें ● चित्त को निर्मल रखें ● वस्त्र वगैरह की पडिलेहणा ● संयम में रहे (पांच समिति और तीन गुप्ति का पालन और निद्रा, विकथा तथा अविवेक का त्याग) ● अकुशल मन का निरोध ● अकुशल वचन का निरोध ● अकुशल काया का निरोध ● शीतादि परिषहों को सहन करें ● मरणादि उपसर्गो को सहन करें (२७)

इस तरह से तथा दूसरी तरह से भी सत्तावीस गुण होते हैं ।

खमासमण प्रणिपात सूत्र

इच्छामि खमासमणो...! वंदिउ जावणिज्जाये निसिहिआये मत्थअेण वंदामि

: शब्दार्थ :

इच्छामि : मैं इच्छुक हुं
खमासमणो : हे क्षमाश्रमण
वंदिउ : वंदन करने को
जावणिज्जाये : शक्ति अनुसार
निसीहिआये : पाप रहित तरह
मत्थअेण : मस्तक से
वंदामि : मैं वन्दन करता हुं

अर्थ : हे क्षमाश्रमण - तपस्वी...! मैं इन्द्रिय विकारों तथा कषायों आदि पापरहितरुप शक्तिअनुसार वंदन करने को इच्छुक हुं और मस्तक से वंदन करता हुं ।

पंच परमेष्ठि के १०८ गुण

अरिहंत	**- १२**
सिद्ध	**- ०८**
आचार्य	**- ३६**
उपाध्याय	**- २५**
साधु	**- २७**
कुल गुण	**- १०८**

नवकारवाली (माला) के १०८ मणके पंच परमेष्ठि के १०८ गुणों को सूचित करते हैं ।

ओम्

ओम धार्मिक चिन्ह है । जैन दर्शन में इसे पंच परमेष्ठि का सार माना जाता है । संस्कृत में ओम शब्द पाँच अक्षरों से बना है ।

ये पाँच अक्षर निम्नानुसार हैं -

अ + अ + आ + उ + म् = ओम्

इन पाँच अक्षर में पंचपरमेष्टि का समावेश होता है, इससे ओम् पंचपरमेष्ठि का सार है । ओम् के अक्षर पंचपरमेष्ठि के प्रतिकरुप हैं ।

प्रथम **'अ'** अरिहंत पद का सूचक है ।
द्वितिय **'अ'** अशरीरी (सिद्ध) पद का सूचक है ।
तृतिय **'आ'** आचार्य पद का सूचक है ।
चतुर्थ **'उ'** उपाध्याय पद का सूचक है ।
पंचम **'म्'** मुनि (साधु) पद का सूचक है।

जैन ध्वज

भगवान महावीरस्वामी के २५०० वी सालगिरह मनाते वक्त जैन शासन के सभी संप्रदायों को मान्य ऐसे जैन ध्वज को मान्यता दी गई ।

यह जैन ध्वज पाँच रंगोका है । जिसके पाँच रंग पंचपरमोष्ठि के प्रतिक स्वरुप है ।

मध्य में श्वेत वर्ण है जो अरिहंत पद दर्शक है । इस श्वेत वर्ण के मध्यमें स्वस्तिक है । उपर लाल और केशरी रंग है, जो सिद्ध एवं आचार्य पद दर्शक है । श्वेत वर्ण के निचे हरा और नीला वर्ण है, जो उपाध्याय एवं साधु पद दर्शक है । जैन ध्वज का बहुमान याने पंच परमेष्ठि का बहुमान है । पंच-परमेष्ठि के बहुमान से चार गतिरुप संसार के दुःखो का नाश होता है और आत्मा को अनंत सुख की प्राप्ति होती है ।

गुणोंका बगीचा

जीवन एक बगीचा है ।

उसमें गुणपुष्पों को खिलाना है । गुणों के पुष्पों से ही चारों तरफ सुगंध फैलेगी ।

जिनेश्वर परमात्मा के शासन में व्यक्ति की पूजा नहीं है । वे तो गुणोंके पूजक है । गुणों के पुजारी हैं । जीवन में आगे बढना हो तो हमारे जीवन-बगिया से कांटे चुनचुन कर दूर करने होंगे । गुणपुष्पो को प्राप्त कर उनका सुंदर जतन करना होगा ।

अरिहंत प्रभुके बारह गुण हैं ।
सिध्द भगवंत के आठ गुण हैं ।
आचार्य भगवंत के छत्तीस गुण हैं।
उपाध्याय भगवंत के पच्चीस गुण हैं ।
साधु भगवंत के सत्ताईस गुण हैं ।
श्रावक के ईक्कीस गुण हैं ।
मार्गानुसारी के पैंतीस गुण हैं ।

हम कहाँ है ? हमारे जीवन में क्या कम है ? हमें क्या मिलाने जैसा है ?

इन सब का विचार जीवन में अत्यंत महत्व का है । पर जब तक गुणोंका परिचय ही न हो तो ऐसी सोच कहाँसे ? आईये मार्गानुसारी गुण क्या है ? कैसे है ? इन सब को जानकर उन्हें स्वीकारने के लिये तैयार हो जाईये ।

मार्गानुसारी के गुण -

कोई भी कार्य करने के लिये व्यक्ति के अंदर विशिष्ट प्रकारकी योग्यता होनी आवश्यक है । उसी तरह महापुरुष जिस मार्ग से चले है, उस मार्ग पर चलकर जीवन सफल बनाया है, ऐसे महामार्ग का अनुसरण करने के लिये अपने पास योग्यता-पात्रता होनी चाहिये ।

महापुररुषों के मार्ग का अनुसरण करने के लिये जीवन में जिन गुणों की आवश्यकता है उन गुणों को 'मार्गानुसारी' के नाम से जाना जाता है । मार्गानुसारी के पैंतीस गुण है । इन पैंतीस गुणों का हम क्रमानुसार परिचय करेंगे ।

गुण -१ न्यायसंपन्न वैभव -

मानवमात्र के लिये जीवननिर्वाह के लिये संपत्ति होना अनिवार्य है । अतः प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में अर्थ पुरुषार्थ करता ही है । पर अर्थोपार्जन के हरेक पुरुषार्थ के साथ न्याय-नीति के मर्यादापालन की अत्यंत आवश्यकता होती है । न्यायनीति के मार्ग से प्राप्त वैभव जीवनमें संस्कारोंका सौरभ और सदाचार को लाता है, और टिकाता है, पर अन्याय अनिती से प्राप्त किया हुआ वैभव जीवन में व्यसन और दुराचार को लाकर जीवन को मुरझा देता है ।

अेक राजा किल्ला बना रहा था, बहुत प्रयासों के बाद भी किला बन नहीं रहा था । अेक संत ने राजा को बताया ''राजन् ! किलेके नींव में नीति से प्राप्त दस मोहरें डाल दे । काम बन जायेगा।'' राजाने वैसेहि किया उसे सफलता मिली. उसे आश्चर्य लगा उसने संत से इसका रहस्य पूछा ।

संतने जवाब दिया - ''राजन् ! यह न्यायनीतिसे प्राप्त किये हुए धन का जादु है।'' संतने राजा से कहा नीति से कमायी हुई दस सोनामोहरें माछीमार को दे और अनीतिसे प्राप्त दस मोहरें किसी सन्यासी को दे, फिर उसका परिणाम क्या आता है इसका निरीक्षण करें'' राजा ने वैसाहि किया - समय बीतने पर राजा ने जाना कि माछीमार सन्यासी बन गया और संन्यासी माछीमार बन गया ।

हमारे जीवन में अनीति का धनप्रवेश जीवन को अस्तव्यस्त और तितरबितर न कर दे इसलिये न्याससंपन्न वैभव का स्वामी बनना अत्यंत आवश्यक है ।

गुण - २. उचित व्यय :-

कितनी महत्वपूर्ण बात बतायी है । वैभव तो न्यायसंपन्न होनाहि चाहिये पर इस वैभव का उपयोग भी विवेकपूर्ण होना चाहिये ।

पूर्वाचार्योंने धन की तीन गतियाँ बताई है -

१) दान २) भोग ३) नाश.

जो दान में भी नहीं दिया जाता और अपने उपयोग में भी नहीं लिया जाता वह धन स्वयमेव विनाश हो जाता है ।

मध्यम उपयोग - स्वंय के उपयोग के लिये इस्तेमाल होता है वह मध्यम उपयोग है ।

दान तो वही कर सकता है, जिसके जीवनमें भोग मर्यादित हो । जिसकी लक्ष्मी भोग में ही व्यय होती हो उसके लिये दान देना कठीन है । आजकल करकसर का गुण ही गायब होते जा रहा है । जिसकी संपत्ती सात क्षेत्र में नहीं वापरी जाती वह व्यसनों में बरबाद हो जाती है ।

यदि अपने जीवनमें आवक के प्रमाण में उचित व्यय (जावक) न हो तो कर्ज बढ जाने की शक्यता होती है । कर्ज बढ जाने से चिंता बढती है । फलस्वरुप स्वास्थ बिगडता है । कभी कभी कहींसे भी मार्ग न निकलनेपर ऐसे जीव आत्महत्या के मार्ग पर जाकर महामूल्यवान मनुष्यभव का अंत कर देते है ।

यदि इन सब समस्यओंका निराकरण करना हो तो आवक को नजर के सामने रखते हुए जीवन चलाना चाहिये ।

गुण - ३. उचित वेश :-

कॉलेजियन लडकियाँ कितने हि दिनोंसे कुछ असंमजस में थी । एक दिन मन मक्कम कर प्रिन्सीपाल साहब के पास गयी । अपनी समस्या बताते हुए कहने लगी - ''सर ! हम हैरान हो गये है । कॉलेज के लडके हमे शांति से पढने नहीं देते । हमारी सतत छेडखानी करते रहते हैं । ऐसे माहौल में पढाई कैसे हो सकती है ?''

प्रिन्सीपाल साहब ने आइ हुई लडकियों की बात शांति से सुनी । फिर कहा - '' मैं तपास कराऊंगा, जो विद्यार्थी तुम्हें परेशान करते हैं उन्हे सक्त सजा करुंगा । परंतु तुम खुद सोचो विद्यार्थीयोंके साथ साथ तुम भी इस परिस्थिती के लिये उत्तरदायी हो । भडकीले वस्त्र, उद्भट वेश, शृंगार का अतिरेक ये सब युवानों को आकर्षित न करेगा तो क्या ? शील ही जीवन का शृंगार है। शीलरक्षा के लिये अपनी लक्ष्मणरेखा का कभी भी उल्लंघन नहीं करना चाहिये । अंगप्रदर्शन के लिये वस्त्र नहीं है, वस्त्र तो अंगोको ढँकने के लिये हैं ।

अपना वेश अपने कुल एवं खानदान के मर्यादानुसार होना चाहिये ।

प्रिन्सीपाल की बात सुनकर आई हुई लडकियां शरमा गई ।

हमने अपने जीवनमें उद्भट वेश का त्याग कर उचित वेश का परिधान करना चाहिये । धर्मक्षेत्र एंव विद्याभ्यास के क्षेत्रों की सविशेष मर्यादा पालन में ही हमारा सबका हित समाविष्ट है ।

गुण - ४. उचित घर :-

गृहस्थ को रहने के लिये घर आवश्यक है । परंतु यह घर कहाँ होना चाहिये और कैसा होना चाहिये ? इस का विचार इस गुण में किया है ।

''जैसा संग वैसा रंग '' इस उक्ति अनुसार अपना घर अयोग्य वातावरण में याने दुराचारी और बुरे संस्कारों वाले आदमी जहाँ रहते हो उस मुहल्ले में न हों । अपने पडौसी एवं आजूबाजू बसते व्यक्ति सदाचारी एंव अच्छे संस्कारों वाले चाहिये । अपने पर एंव बच्चों के मानस पर आजूबाजू के व्यक्तिओंका गहरा असर होता है । सुसंस्कारों के सिंचन के लिये अच्छे पडौसी होना जरुरी है ।

घर की चीजें एवं व्यक्तियों के रक्षण के लिये घर बहुत खिडकियाँ एंव दरवाजोंवाला नहीं चाहिये । घर की मर्यादा का रक्षण करनेवाला चाहिये । घरमें स्त्रियोंके शीलका रक्षण हो सके ऐसा घर चाहिये । घर में से बाहर निकलने के लिये अेकसे ज्यादा द्वार चाहिये, जिससे विपत्ती के समय में सलामती रहे और बाहर निकल सके ।

गुण - ५. उचित विवाह :-

संसार छोडने जैसा है.... संयम स्वीकारने जैसा है । परंतु जिसका सत्व संयम लेने जैसा उंचा न हो तो ऐसे जीव संसार में रह सके इसलिये उचित विवाह की बात बतायी है । शास्त्रकारोंने गृहस्थ जीवन में विवाहसंबध की बात आई तो कहा कि संबंध मित्र गोत्रवाले और समान कुल-खानदान वालों के साथ जोडना चाहिये ।

विवाह संबंधो में आजकल रुप-संपत्ति एवं बाह्य शिक्षा को ही महत्व दिया जाता है । कुल-खानदान एंव गुणोंका महत्व गौण बन गया है । फलस्वरुप घर घर में क्लेश और संघर्ष खडा हो जाता है । समान कुल और खानदान हो तो दोनो परिवार और व्यक्तियोंके बीच विचारों और आचारों में रीत-रिवाजों में समानता होती है । अतः वैमनस्य पैदा नहीं होता, जब कुल और खानदान में अंतर होगा तब आचार-विचार-संस्कार सब में तफावत आयेगी जिससे मतभेद हुए बिना नहीं रहते ।

उचित विवाह सुखी एवं शांति पूर्ण जीवन की नींव समान है । विवाह प्रसंगों में रात्रिभोजन एंव अभक्ष्यभक्षण का त्याग होना चाहिये ।

गुण -६. अजीर्ण में भोजनत्याग :-

देह को टिकाने के लिये भोजन आवश्यक है । पर जब अजीर्ण हुआ हो तब भोजन का त्याग अनिवार्य है । अजीर्ण सब रोगों का मूल है । जब अजीर्ण होता है तो पेट अकार्यक्षम बन जाता है । हमारी पाचनशक्ति मंद हो जाती है । ऐसे में भोजन किया जाय तो स्वास्थ ज्यादा बिगडने की संभावना होती है, अतः पेट को आराम देने के लिये भोजन का त्याग करना चाहिये ।

शरीर साधना का मुख्य साधन है । शरीर स्वस्थ तो सभी अच्छा तथा कहा गया है 'पहला सुख है शरीर का स्वास्थ'' (पहेलुं सुख ते जाते नर्या) साधना के लिये शरीर स्वस्थ रखने के लिये भोजन त्याग कर आयुर्वेदशास्त्र का अनुसरण करना चाहिये ।

गुण - ७. समयपर सत्वपूर्ण भोजन :-

अजीर्ण के समय भोजन त्याग की बात बताने के बाद अब भोजन कब और कैसे करना यह बताते है ।

बराबर भूख लगी हो - पहले खाया हुआ पच गया हो तभी भोजन करना चाहिये । भोजन का समय भी नियमित एकही समय होना चाहिये । चाहे जब चाहे तब खानेसे शरीर का पाचनतंत्र बिगडे बिना रहता नहीं । भोजन में अनियमितता होना नहीं चाहिये रात्रीभोजन त्याग करनेयोग्य है ।

शरीर की प्रकृति एवं तासीर को जानने के बाद इस के अनुरुप भोजन लेना चाहिये । अति तीखा तला हुआ, अति खट्टी, अति खमीरवाला, अति मादक ऐसे वस्तुओं का त्याग करना चाहिये । भोजन का प्रभाव हमारे मनपर और उसके द्वारा शील सदाचार पर पडने के कारण आहार के विषय में हमें अति जाग्रत रहना चाहिये । ''जैसा अन्न वैसा मन'' इस बात को नजर के सामने रखकर भक्ष्याभक्ष्य एंव सारासार का विचार कर सात्विक भोजन को जीवन में स्थान देना चाहिये ।

गुण - ८. माता पिता की पूजा :-

''मातृ देवो भव । पितृ देवो भव'' यह आर्य संस्कृति की अनोखी देन है । इस धरती पर माता-

पिता को देव मानकर पूजा की जाती है । शिल्पी पत्थर मेंसे प्रतिमा का सर्जन करता है, उसी तरह अज्ञानी एवं अणघड ऐसे हमें संस्कार और शिक्षण द्वारा माता-पिता संस्कारित करते है । आज हम जो कुछ भी है उसमें माता-पिता का योगदान और हिस्सा महत्व का है । उनके उपकारों का स्मरण हमारे जीवन में सतत होना चाहिये । पिता के वचनपूर्ति के लिये प्रभु रामचंद्रजीने वनवास स्वीकारा, पिता की भक्ति के लिये गांगेय भीष्म पितामह ने विवाह न करने की और राजा न बनने की प्रतिज्ञा ली थी । श्रवणकुमार ने माता-पिता की भक्ति करने के लिये अंध माता-पिता को कावड में तीर्थयात्रा करायी ।

माता-पिता के दिल से निकले हुए आशिर्वाद में हमारे जीवन बाग को हराभरा बनाने की अदभूत शक्ति है । जब कि उनके दिल से निकली आहों में हरेभरे बाग को जंगल में तब्दील करने की ताकत है ।

उपकारी माता-पिताकी सेवा कर उनके दिल के आशीष पाने के लिए सदैव कटिबद्ध रहना चाहिये ।

गुन - ९. पोष्य पोषण :-

जिस तरह उपकारी माता-पिता की जीवनमें सेवा पूजा और भक्ति करनी चाहिये, उसी तरह हमारे आधार से घरमें रहने वाले अन्य परिवार जनोंके पोषणका उत्तरदायित्व भी हमें निभाना है । पत्नी -पुत्र, पुत्री-बुआ-काका-मामा आदि का यथायोग्य निर्वाह करना हमारा कर्तव्य बनता है । अन्य सदस्यों का निर्वाह करते वक्त अपनी अनुकूलता का त्याग करना पडे तो उसकी भी मानसिक तैयारी रखनी चाहिये । आज दुनिया में अपने स्वार्थ के लिये उडाउ वृत्ति देखने को मिलती है पर मेरी संपत्ती सब के, समाधि के लिये हो यह भावना विरलों कि ही होती है । मेरे परिवार का कोई सदस्य भूखा न रह जाय यह देखने के साथ साथ बिमार, ग्लान, बाल-वद्ध की सेवा करने का मौका मिले तो उठा लेना चाहिये ।

गुण - १० - अतिथि - साधु - दीन की प्रतिपत्ती :-

आर्यभूमि में माता-पिता को देवतुल्य मानते हैं । उसीतरह अतिथि को भी देवतुल्य मान कर पूजा जाता है । इसिलीये ''अतिथि देवो भव'' कहते हैं । द्वारपर अतिथि का आगमन भी पुण्ययोगका उदय माना जाता है ।

भगवान महावीर स्वामी के जीव को तीर्थंकर पद तक पहुँचाने वाला गुण अतिथि भक्ति का ही था । नयसार के भव में जंगल में अतिथि भक्ति करने की - लाभ लेने की भावना हुई । पुरुषार्थ किया और साधुभक्ति का लाभ मिल गया, साधुभक्ति करते हुए सम्यगदर्शन की प्राप्ति हो गयी । आत्मा उत्तरोत्तर साधना करते हुए तीर्थंकर बना । द्वारपर आया हुआ याचक हो-महेमान सज्जन हो या साधु हो सबका यथा-योग्य सत्कार होनाही चाहिये । सन्मान के साथ उनकी समयोचित योग्य भक्ति होनी ही चाहिये । जिसके जीवन में भक्ति और सेवा का गुण बुना हुआ होता है, वही ऐसे अवसर का लाभ ले सकता है ।

गुण ११. ज्ञानवृद्ध एवं चारित्रपात्र की सेवा :-

हम भवोभव भटके और अनेक प्रकारके दुःख भोगे इसके पीछे के अनेक कारणों में से एक कारण यह भी है कि हमने कभी भी ज्ञानी और सुचारित्र्यवान व्यक्तियों का सत्संग किया नहीं । जब उनके सत्संगकी ही संभावना नहीं है तो उनकी सेवा कहाँसे आयेगी । ज्ञान और चारित्र जीवन के मुख्य दो गुण है । इन गुणों के बिना जीवन का विकास शक्य नहीं है । ज्ञानी सच्ची समज देते हैं और चारित्र पात्र महात्मा सदाचार के मार्ग में स्थिर करते है । ऐसे महानुभावों की सेवा हमारे अंतर में ज्ञान का प्रकाश फैलाकर हमे सन्मार्ग के सच्चे पथिक बनाते हैं ।

आज के समय में ज्ञानी और चारित्रवान की

उपेक्षा, मजाक और तिरस्कार हो रहा है । तब यह गुण हमें मार्गच्युत होने का भान कराकर मार्ग पर चढने का इशारा कर रहा है ।

गुण - १२. निंदा त्याग :-

मानव जीवन अनमोल है । उसका एक एक पल लाखमोल का है । इस लाखमोल के पल में सव्वा लाख की कमाई करें तो जीवन सफल बन जाय पर लाख की कमाई पल में राख की कमाई हो तो जीवन निष्फल बन जाता है । हम सोचें अपने जीवन के अनमोल पलों में कमाई कर ली कि ये पल गँवा दिये । हमारे जीवन पर नजर करें तो ख्याल आयेगा कि निंदा करने का ऐसा रस जमा हुआ है कि सुकृत की अनुमोदना होती ही नहीं, निंदा हमारे जिव्हा को अपवित्र बनाती है । सब के साथ के प्रेम संबंधो में सेंध लगाती है । अन्यों के गुण देखने की शक्ति हम गँवा देते हैं। और सब के दोषोंको देखनेकी बुरी आदत मजबूत बनती जाती है । निंदा करते वक्त भान गुमाकर उपकारी एवं गुणवान महात्माओंकी भी निंदा हम कर बैठते हैं । निंदक देव-गुरु-धर्म की निंदा करने में भी पीछेहठ नहीं करता । अपने मन की बात दुसरे के सामने अभिव्यक्त करने की शक्ति हमें प्राप्त हुई है । उसका उपयोग प्रभु, स्तुति-स्तवन में, सुकृतों की अनुमोदना में और सज्जन संतो के गुणों की प्रशंसा करने के सदुपयोग के बदले हम अन्यों की निंदा करते हैं । तो जागृत बनकर गैरों की निंदा का त्याग कर सोलहवे परपरिवाद याने निंदा के पापस्थान से दूर रहें ।

गुण - १३. निंद्य प्रवृत्तिका त्याग :-

निंदात्याग हमारी वाणी को शुभ-शुध्द और पवित्र बनाता है । जबकि निंद्यप्रवृत्तिओंका त्याग हमारे जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाता है । सुंदर चित्र आलेखना हो, उसमें सुंदर रंगपूर्ति कर अतिसुंदर बनाना हो तो जहाँ चित्र बनाना है, उस भूमिको स्थान को स्वच्छ बनाना ही पडता है । यदि स्थान शुद्धि न हो तो चित्र की सुंदरता असंभवित है । उसी तरह जीवनको सुंदर बनाना हो तो जीवन स्वच्छ बनाना आवश्यक है । जीवन स्वच्छ बनाना हो तो जीवनमें प्रविष्ट दूषणोंका, निंद्य प्रवृत्तिओंका त्याग करना ही पडेगा । आज घरघर में गलत प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं, उनपर ब्रेक लगाना जरुरी है । हॉटेल, सिनेमा, ब्यु फिल्में, बिभत्स साहित्य, दारु, जुगार जैसी निंद्य प्रवृत्तियाँ समाज में बढ रही हैं । एक दूसरे के देखा-देखीसे सब ऐसी प्रवृत्तियों में संलग्न हो रहे हैं । इससे जीवन की बरबादी को आमंत्रित कर औरोकों निंदा करनेका मौका दे रहे हैं ।

हमारे अपने जीवन में ऐसा कोई दूषण प्रविष्ट हो गया हो तो सत्वर दूर करने का पुरुषार्थ करना है । पैर में जिस तरह कांटा खटकता है, वैसे हि हमारा अपना दूषण खटके और पीडा दे तो ही उसमेंसे बाहर निकलने की प्रवृत्ति होगी ।

गुण - १४. इंद्रियो के गुलामी का त्याग :-

हमें कोई पूछ ले ''क्या बनना है तुझे मालिक या गुलाम?'' तो हम सबका जवाब होगा 'मुझे गुलाम नहीं बनना, मुझे तो मालिक बनना है''। पर अफसोस ! हमारे जीवन की ओर ज्ञानी भगवंत देखें तो कहेंगे - हमारा प्रयत्न मालिक बनने का नहीं पर गुलाम बनकर रहने का है । हम हमारी पाँचो की पाँचो इंद्रियोंके गुलाम है । इंद्रियाँ मांगती है वह हम उसे देते हैं । हमारे आसपास रचे हुए सुख के साधन हमारे भीषण इंद्रिय गुलामी को दर्शाते हैं । इन्द्रियों का गुलाम कभी भी सुखी नहीं होता । कुछ प्राप्त करने के लिये, किसी इंद्रिय की मांग पूरी करने के लिये, वह सतत प्रयत्नशील रहता है, दौडता रहता है । जन्म से लेकर मृत्युतक दौडने वाला इंद्रियो कों संतुष्ट नहीं कर

सकता । अनंतबार स्वर्गसुख भोग लिये हैं पर जीव तृप्त नहीं हुआ । इस भव में इंद्रियोंको चाहे जितना दें पर वह संतुष्ट नहीं होंगी ।

इंद्रियों की गुलामी से मुक्त होना हो तो इंद्रियों को उनके विषयानुरुप पदार्थ देना बंद करो । वह मांगे वह देना नहीं, जिस तरह अग्निमें इंधन डालने से अग्नि शांत होने के बजाय भडकती है, उसी तरह इंद्रियों को देते रहने से मांग बढती रहती है । परंतु यदि विषय भोग के दारुण परिणामों का चिंतन किया जाय... भोग में रोग के दर्शन हो जाय तो ही इंद्रियों की गुलामी से मुक्ति मिल सकती है । वो समझ के घर में आयें व्रत-नियम, तप-त्याग का बंधन स्वीकारें इंद्रियों की गुलामी त्याग कर आत्मा के सम्राट बनें ।

गुण - १५. अभिनिवेश त्याग :-

अभिनिवेश याने कद्राग्रह, हठाग्रह, दुराग्रह । मैं कहूँ वही सच यह झूठी मान्यता ।

विश्वमें, देशमें, समाज में और घरघर में जो कलुषित वातावरण निर्माण हो रहा है, उसके पीछे यही अेक मुख्य कारण है - अभिनिवेश । आजका मानव अपने मंतव्य को ही अंतिम सत्य समझ बैठा है । सामने के व्यक्तिकी बात को समझने के लिए नहीं है, तो सुनने को भी तैयार नहीं होते । परिवार का प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि मैं कहूँ वैसेही घर का कारोबार चले, हर नेता कहता है कि मैं कहूँ वैसेही राज चलना चाहिये, क्या यह संभव है ? बहुत बार अपनी बात गलत है यह समझ में आने पर भी मनुष्य अपनी बात को, दुराग्रह को छोडने तैयार नहीं होता । अपने अहंकार को टिकाये रखने के लिये, अपनी झूठी बात समाज में ठोक पीटकर बैठाने का प्रयत्न करते है, जिससे समाज को बढा नुकसान पहुँचाने के लिये हम तैयार रहते हैं ।

समाज या शासन के हित से भी अधिक हमारे अहंकार की कीमत होती है । अज्ञान दशा में ऐसी अनेक चेष्टाअें कर हम कर्म से भारी हुअे हैं । सर्वत्र क्लेश और संघर्ष की होलियाँ जलाने में निमित्त बने हुए है ।

अब जब स्व और पर के जीवन में शांति और प्रसन्नता का साम्राज्य स्थापित करना है तो अभिनिवेश का त्याग कर देना चाहिये । उसी में सब का हित समाया हुआ है ।

गुण - १६. आंतर शत्रुंजय :-

जहाँ शत्रु है वहाँ भय है । जहाँ शत्रु है वहाँ दुःख है । जिसे अभय और सुखी बनना है उसे शत्रु को जीतना आवश्यक है । शत्रु दो प्रकार के होते है -
१) बाह्य और २) आंतर शत्रु । बाह्य शत्रुसे हम सावधान भी है और उनपर विजय मिलाने में उत्सुक भी है । पर बाह्य शत्रुओं को पैदा करनेवाले अंतर शत्रुओं से हम अज्ञात और असावधान भी है । काम,क्रोध,मान,मद,लोभ और हर्ष ये छः आंतरशत्रु है । ये छः आंतरशत्रु हमें सतत हैरान-परेशान कर रहे है । दुःख और दुर्गति में घुमा रहे हैं ।

कामविजेता बनना हो तो खाने में, पीने में, रहने में, वेश और पारिधान में सादगी अपनाना जरुरी है । सत्संग-सदवाचन और शुभ प्रवृत्तियों में मन को संलग्न रखने का प्रयास करना चाहिये ।

सब के साथ प्रेम-मैत्री के संबंधो में आग लगाने वाले क्रोध को जीतकर क्षमा की साधना करनी पडती है । छोटी-बडी प्रतिकूलताओंको सहन करनेकी कला विकसित करनी पडती है ।

धर्म के मूल समान विनय गुण को नाश करनेवाला मान, 'बाहुबली' जैसों को बारह बारह महिनों तक कायोत्सर्ग और ध्यान करने के बाद भी केवलज्ञान से दूर रखने में सफल होता है । मान हमें सभी जगह अप्रिय बनाता है ।

मद याने गुमान, मद आठ प्रकारके है ।
१) जातिमद २) कुलमद ३) बलमद ४) लाभमद ५) रुपमद ६) श्रुतमद ७) अैश्वर्य मद ८) बुद्धिमद

लाभ बढता है वैसे लोभ बढता है । लोभ को जीतने के लिये संतोष करना सीखना चाहिये । लोभ सभी गुणोंका नाश करनेवाला है ।

संसारके सुखों की प्राप्ति पर जीव को हर्ष होता है, पर सामग्री चंचल एवं क्षणभुंगर होने से कभी तो इसका वियोग होगा ही । यदि संयोग में हर्ष है तो वियोग में शोक होगा ही । हर्ष को जीतने के लिये संसार की अनित्यता को समझने का प्रयत्न करना चाहिये ।

गुण - १७. त्रिवर्ग में अबाधा :-

चार प्रकार के पुरुषार्थ हैं । १) अर्थ पुरुषार्थ २) काम पुरुषार्थ ३) धर्म पुरुषार्थ ४) मोक्ष पुरुषार्थ इसमें से सामान्य जीव के लिये पहले तीन पुरषार्थ हैं । वे भी इस प्रकार से होना चाहिये कि जिससे एक दूसरे को बाधा न आये । गृहस्थ जीवन में अर्थ (पैसोंका) उपार्जन करनाही पडता है, परंतु अर्थोपार्जन में धर्म के सामान्य नियमों का पालन करना ही पडता है । अन्याय एवं अनीति से धन नहीं कमाया जाता । उसी तरह गृहस्थ जीवन में धर्म पुरूषार्थ का इतना अतिरेक नहीं होना चाहिये कि धंधा या आजीविका चला न पायें, नुकसान हो ।

संसार की सुख सामग्री और कामवासना पर धर्म का नियंत्रण होना चाहिये । धर्म की मर्यादामें रहकर ही अन्य पुरुषार्थ साधना है । जब इन तीन पुरुषार्थो के बीच सहज संगति हो, तभी जीवन में शांति एवं प्रसन्नता भरपूर होती है । जीवन जीने लायक बनता है । अति की कोई गति नहीं होती, इस उक्ति को नजर के सामने रखकर सब जगह लगाम लगानी चाहिये । अर्थ और काम पुरुषार्थ पर धर्म का नियंत्रण चाहिये । धर्म पुरुषार्थ भी समय एवं संयोगों को समझकर करना चाहिये । कुल एवं खानदान की मर्यादा नजर के सामने रखकर अर्थ-काम पुरुषार्थ की साधना है । तीनों एक दूसरे को कहीं बाधक न बने - तीनों का सुयोग्य संयम यदि गृहस्थ जीवनमें हो तो उस नींवपर सुखशांतिका महल शोभायमान हो उठता है ।

गुण १८. उपद्रववाले स्थान का त्याग :-

उपद्रव अनेक प्रकार के होते है । कहीं सांप... बाघ... सिंह जैसे हिंसक प्राणियोंका उपद्रव होता है । कहीं चोर, लुटेरे, हत्यारों जैसे हलकी व्यक्तियों का उपद्रव होता है । कहीं भूत-प्रेत-व्यंतरादि असुरी तत्वों का उपद्रव होता है । कहीं मारी... मरकी... दुष्काल आदि रोगादि उपद्रव होते हैं । ये सब उपद्रव मनमें सतत भय निर्माण करनेवाले - अशांति उत्पन्न करनेवाले होते हैं । ऐसे उपद्रव युक्त स्थानों में अच्छे व्यक्तियोंका संग दुर्लभ होता है । अच्छे संस्कारों के धन का रक्षण अशक्य बन जाता है । मन को सतत अशुभ निमित्त और आलंबन मिलते जानेसे धर्म-दया-क्षमा-करुणा आदि गुण गायब हो जाते है । हृदय कठोर बन जाता है । अपनी सलामती के लिये सब के साथ संबंध तोडना पडता है अथवा हलकी वृत्ति के व्यक्तियों के साथ मैत्री बनानी पडती है । दोनों जीवन को बर्बाद कर देती है ।

उपद्रववाले स्थानपर रहने से धन-यश-किर्ति का नाश तो होता ही है, पर कभी कभी ऐसे स्थान जीव का घात करनेवाले भी होते हैं । ऐसे स्थानों में रहकर बच्चे अपमार्ग पर चले जाने की संभावना रहती है ।

मानवी जीवन सुसंस्कार एवं शांति की सलामती चाहनेवालोंने उपद्रवयुक्त स्थान का त्यागकर निरुपद्रवी स्थान पर रहने चले जाना चाहिये ।

जीव-विचार

विश्व विविध प्रकार के जीवों का भंडार है । किस-किस प्रकार के जीव हैं इस विश्व में ? जानना-समझना-देखना और अनुभव करना बहुत ही कठिन है, परंतु अपनी अपूर्व पुन्याई है कि हमें सर्वज्ञ कथित शास्त्र मिले । जिसमें उन्होनें गागर में सागर की तरह विशाल श्रुत-सागर का खजाना हमें दिया है ।

संसारी जीवों में एकंद्रिय जीव जिनके पास केवल शरीर है, अेक मात्र स्पर्शेन्द्रिय हैं, फिर भी कितने कितने भेद प्रभेद हैं । सर्वज्ञ के बिना इनका ज्ञान कौन दे सकता है ?

पृथ्वीकाय के विविध जीवों को जाना-समझा.... अपकाय के जीवों को जाना-समझा....

यह तो अपनी संक्षिप्त विचारणा है, विस्तार करने बैठे तो जिंदगी भी कम पडे और हम कहीं भी न पहुँच पायें ।

पृथ्वीकाय तथा अपकाय को जानने समझने के पश्चात आओ हम आगे बढें । अग्निकाय के जीवों को जानने समझने का प्रयत्न करें ।

तेउकाय

इंगाल जाल मुम्मुर, उक्कासणि कणग, विज्जुमीया ।
अगणिजियाणं भेया, नायव्वा निउण बुद्धिए ।। ६।।

गाथार्थ :- अंगारो का अग्नि, ज्वालाओं, गरम राख का, उल्कापात का, वज्र का, कणिआ का, बिजली का वगैरह अग्निकाय के भेद निपुण (सूक्ष्म-तीक्ष्ण) बुद्धि से जानना ।

अग्निकाय के भेदों को बताने के साथ एक चेतावनी भी दी है कि अग्निकाय के भेदों को सूक्ष्म बुद्धि से जानना, किसलिये ? ऐसी कौन सी विशेषता है इसमें ? यहाँ अग्निकाय की जहाँ जहाँ विराधना होती है वहाँ वहाँ अन्य दूसरे भी अेकेंद्रिय से पंचेद्रिय जीवों की विराधना की संभावना होती है ।

सामान्य बात है, बीडी पीनेवाले ने बीडी पीकर पिछला ठूंठा हिस्सा फेंक दिया । बीडी सुलगाई, अग्निकाय की विराधना, आजु-बाजु में रहे हुए हवा के जीवों को तकलीफ, उसमें रहे हुए सूक्ष्म जीवजुंतुओ की विराधना की संभावना, बीडी फेंकते समय सावधानी न रखे तो घास आदि जले, सूखे नन्हें झाड सुलगें जिसमें छोटे बडे जीव जल कर मरें... इसलिये ही शास्त्रकार महर्षिओ अग्निकाय की बाबत में बुद्धिपूर्वक काम करने की खास सलाह देतें है । अग्नि सर्वभक्षी है इसके संपर्क में जो आवे उसे जला कर राख कर दे । विद्युत में भी जीव हैं, एक कण में भी असंख्य जीव हैं । वर्तमान में बिजली के निर्माण में भी जीव विराधना है... उसके उपयोग में भी विराधना है । जयणा हमें कई पापो से बचाती है ।

वायुकाय

अग्निकाय के जीवों के अल्प परिचय के पश्चात हम वायुकाय को जाने -

उब्भामग उक्कलिआ, मंडलिमुह सुद्ध गुंजवायाय
गणतण वायाईया, भेया खलु वाउकायस्स ।।७।।

गाथार्थ - उदभ्रामक (उपर चढता) वायु, उत्कलित वायु (नीचे पडता वायु), मांडलिक वायु, महावायु, शुद्धवायु (मंद मंद बहता) गुंजन करता वायु तथा घनवात (घनावायु) तनवात (पतला वायु) (जिसके आधार पर नरक और देवलोक रहे हुए है वह) इस प्रकार से वायुकाय के भेद है ।

वायुकाय में भी जीव है । वायु स्वयं जीवमय है । इसलिये पंखे से हवा करते समय, हवा में कपडे सुकाते वक्त कपडे झटकते समय वायुकाय के जीवों की विराधना होती है । इन जीवों को अभयदान देने के लिये इनके भेदों को जानकर जहाँ जहाँ भी इनकी विराधना की संभावना है उसे जानकर टालने का प्रयत्न करना है । हारमोनियम, बाँसुरी-फूंकनी वगैरह के उपयोग में भी वायुकाय की विराधना होती है ।

यहाँ अेकेन्द्रिय में से पृथ्विकाय, अपकाय, तेडकाय तथा वायुकाय के विविध भेदों का आंशिक रुप से परिचय प्राप्त किया । जैसे जैसे अेकेन्द्रिय के भेदों का गहराई से विचार करेंगे, वैसे वैसे हमें ख्याल आयेगा कि श्रावक का जीवन अेकेन्द्रिय की विराधना के बिना असंभवित है, परंतु इन जीवों की जानकारी प्राप्त करने के पश्चात जीवन में जयणा सावधानी आ जाये और अपना हृदय इतना कोमल बन जाय कि थोडी भी जीव विराधना हमें अस्वस्थ बना दे कि आखिर संपूर्ण विराधना से बचने के लिये जीव अविरति में से विरति की और दौड जाय.... देशविरती मेंसे सर्वविरति की तरफ प्रस्थान करे ।

यहाँ जीव-विचार के अभ्यास से जीवन में कैसे कैसे सहज परिवर्तन शक्य बन सकते है, उसका थोडा विचार करें ।

● सोना-चांदी वगैरह पृथ्विकाय के कलेवर (मुर्दे) हैं, यह ज्ञान सोने-चांदी के उपर की आसक्ति-ममत्व को घटायेगा । मोह कम होगा, उसके निमित्त से होने वाले क्लेश कंकास कम हो जायेगें ।

● पानी के एक बिन्दु में असंख्य जीव हैं, ऐसी समझ पानी का उपयोग जयणा पूर्वक करने का सिखलाती है । पानी के जीवों के प्रति मैत्री भाव, पानी के दुर्व्यय को अटकाता है । अनेका अनेक जीवों को अभयदान प्रदान करता है ।

● अग्नि के एक कण में भी असंख्य जीव हैं, यह ज्ञान हमें अग्नि और बिजली के उपयोग के समय याद आयेगा । मेरे अकेले के सुख के लिये कितने जीवों की विराधना करुं ? यह विचार विराधना से हटाकर आराधना में आगे बढायेगा ।

● वायुकाय में भी असंख्य जीव हैं । जरासी गरमी लगी कि तुरंत बटन दबाते हैं, जिससे अग्निकाय और वायुकाय के असंख्य जीवों का पल पल विनाश होता है । जरा सहन करने की आदत डालें, तो सभी जीवों को अभयदान मिल जाये ।

जयणा की और अभयदान की विचारणा हृदय को ज्यादा से ज्यादा कोमल बनाती है । सभी जीवों को सुखी बनाने की भावना अधिक से अधिक मजबूत बनती है । यह भावना जब चरम सीमा पर पहुँचती है तब स्वयं के सुख की बजाय दूसरों के सुख का विचार ज्यादा सताता है । सभी जीवों के सुख की उत्कृष्ट भावना ही अंततः केवल्य की पगडंडी का निर्माण करती है ।

अर्णिकाचार्य नाव में बैठकर गंगानदी पार कर रहे थे, बीच में मिथ्यात्वीदेवी ने उपसर्ग किया, आकाश में उछालकर त्रिशुल पर अद्धर पकड लिया... त्रिशुल की नोंक पेट में घुस गई... तीव्र वेदना होने लगी मौत नजर आने लगी... त्रिशुल से हुए जख्म में से खून की बुंदे पानी में गिरने लगी...अणिकाचार्य को उसका ख्याल आते ही अस्वस्थ्य बन गये... अरे रे... मेरे निमित्त से मेरे ही खून से पानी के असंख्य जीवों की विराधना हो रही है... (पानी में कोई भी वस्तु डालने से पानी के जीवों का आयुष्य पूरा हो जाता है... वे जीव च्यव जाते हैं । नमक... शक्कर.. नींबू वगैरह के मिश्रण से.. गरम में ठंडा पानी डालने से, एक कुए या तलाव का पानी दुसरे नदी, कुए या तालाब

में डालनेसे जीव च्यव जाते है) स्वयं के देह की वेदना की बजाय पानी के (अपकायके) जीवों की विराधना की वेदना तीव्र बनी, स्वसुख के बजाय परसुख महत्वपूर्ण बना... पानी के जीवों के शुभ चिंतन में आत्मा की अनादि की मलिनता दूर हो गई... शुभ चिंतन आत्मा के शुद्ध चिंतन में परिणमित हुआ.. घाति कर्मो को चूर कर केवलज्ञान का सूर्य प्रकट हुआ ।

जीव विचार के अभ्यास से हृदय को कोमल बनाकर.. मैत्री भावना को मजबूत कर संसार में जयणा की समृद्धि प्राप्त कर मुक्ति की मंजिल की तरफ आगे बढे ।

वनस्पतिकाय

पृथ्विकाय - अपकाय - तेउकाय - वायुकाय की विचारणा के बाद अब हम अेकेन्द्रिय के पाँचवे और अन्तिम भेद को समझने का प्रयत्न करेंगे ।

साहारण पत्तेआ, वणसर जीवा दुहा सुए भणिया ।
जेसि मणंताणं तणु, एगा साहारणा तेउ ।।८।।

गाथार्थ :- सूत्रों में वनस्पतिकाय के जीव साधारण और प्रत्येक ऐसे दो प्रकार के है । एक शरीर में अनंत जीव हो वह साधारण वनस्पतिकाय है ।

साधारण वनस्पतिकाय ही अनंतकाय और कंदमूल के नाम से भी पहचानी जाती है । साधारण वनस्पतिकाय अभक्ष्य किसलिये ?

जीवन जीने के लिये शरीर को भोजन दिये वगैर नहीं चलता परंतु मानव की दृष्टि और प्रयत्न ऐसा होना चाहिये कि कम से कम जीवों को तकलीफ देकर भोजन करुं । साधारण वनस्पतिकाय के एक शरीर में अनंत जीव है । शास्त्र कहते हैं कि सुई के अग्रभाग जितने साधारण वनस्पतिकाय में अनंत जीव हैं । इससे अगर साधारण वनस्पतिकाय का खाने में उपयोग करे तो प्रथम तो अनंतानंत जीवों के घात का पाप ललाट पर लिखे जायेगा, हिंसा का दोष लगेगा अनंतकाय के भक्षण से धीरे धीरे हृदय में से...जीवन मेंसे जीवदया के परिणाम विदा होते जायेंगे और हृदय कठोर बनता जायेगा ।

कुछ साधारण वनस्पतिकाय के सेवन से प्रकृति तामसिक बनती है । कांदा-लक्षण वगैरह खाने से जीवन में क्रोध का प्रमाण बढता जाता है ।

अधिक मात्रा में बटाटे (आलू) सूरण, बीट आदि के सेवन से ज्ञानतंतु जड होते जाते हैं ।

इन सभी कारणों से शास्त्रकार महर्षिओ ने साधारण वनस्पतिकाय को अभक्ष्य बता कर त्यागने योग्य, छोडने योग्य कहा है ।

साधारण वनस्पतिकाय में क्या क्या आता हैं ?

साधारण वनस्पतिकाय का सामान्य परिचय करा कर हमें अभक्ष्य बताया, परंतु साधारण वनस्पतिकाय में किनका समावेश होता है ? यह बात यहाँ विस्तार से कहेंगे -

कंदा अंकुर किसलय, पणगा सेवाल भूमिफोडाय ।
अल्लयतिय गज्जर, मोत्थ वत्थुला थेग पल्लंका ।।९।।
कोमल फलं च सव्वं, गूढ सिराईं सिणाइपत्ताईं ।
थोहरी कुंआरि गुग्गुलि, गलोय पमुहाय छिन्नरुहा ।।१०।।
इच्चाईणणो अेणेगे, हवंति भेया अनंत कायाणं
तेसि परिजाणत्थं, लख्खणमेय सुए भणियं ।।११।।

गाथार्थ :- कंदमूल, अंकुर, पांच रंग की काई (शेवाल) कुकुरमुत्ता (आर्दकत्रिक) यानि गीली अदरक, हल्दी और कचुरा, गाजर, मोथ, थेग, पल्लंक (पालक) सर्व जाति के कोमल फल जिसमें बीज पूरी तरह से तैयार न हुये हों, जिनकी नसें वगैरह गुप्त हों (दिखाई न देती हो ऐसी वनस्पति) तथा शण वगैरह के पत्ते, थोर की जात (थोहर) कुंवारपाठा, गुग्गल वृक्ष, गुडवेल प्रमुख तथा जो छेदकर बोने पर उगे वे सभी अनंतकाय हैं । इन अनंतकाय के भेदों को विशेष से जानने के लिय उनके लक्षण शास्त्र में कहे गये हैं ।

नव - तत्व.... (जीव - तत्व)

नवतत्व का तत्वज्ञान हमें चिन्तन की नई दिशा देता है । जिन्हे भी यह दृष्टि प्राप्त होती है, वह पुन्यशाली आत्मा मिथ्यात्व से दूर और सम्यकत्व के नजदीक पहुँचते हैं । हम अनादि काल से सच्ची दृष्टि के बिना ही इस संसार में भ्रमण कर रहे हैं । अनंत जन्म मरण करके अनेक प्रकार के दुःखों को भोग रहे हैं । इन सभी दुःखो और दुर्गतिओं का अन्त लाने का उपाय है नव-तत्व का ज्ञान । जिन्होनें भी यह ज्ञान प्राप्त किया उनकी आत्मा तिर गई और अनेकों को तिराने वाली बनी । जितने भी तिरे नवतत्व से तिरे और जितने भी डूबे नवतत्व के अज्ञान से डूबे ।

जीव से शिव बनने की यात्रा का सुंदर मार्ग नवतत्वमें दर्शाया गया है । अपना जीव ही शिव बनने का अधिकारी है । इसी जीव तत्व का अदभुत परिचय यहाँ कराया गया है । जीव के भेद... जीव के लक्षण... जीव की पर्याप्तियाँ तथा जीव के प्राण इन सभी का परिचय कराया गया है ।

जीव तत्व का परिचय पाकर इनके गुणों को, और लक्षणों को प्रगट करने का प्रचंड पुरुषार्थ कर, मिले हुए मानव जीवन को सफल बनाने में उद्यमशील बनें ।

एगिदिय सुहुमियरा, सन्नियर पणिंदिया य सबितिचउ ।
अपज्जत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा ।। ४।।

एकेन्द्रिय सूक्ष्म और इतर (यानि एकेन्द्रिय बादर), संज्ञि और इतर (असंज्ञि) पंचेन्द्रिय तथा बेइन्द्रिय, तेईन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और पर्याप्त इस क्रम से चौदह जीवस्थान है ।

जीव के चौदह भेद हैं, उनकी विशेषता यहाँ बताते हैं ।

प्रथम इन्द्रियो की अपेक्षा से जीव के पाँच भेद होते हैं -

१) एकेन्द्रिय २) बेइन्द्रिय ३) तेइन्द्रिय ४) चउरीन्द्रिय ५) पंचेन्द्रिय

अब एकेन्द्रिय जीवो एक स्पर्शेन्द्रिय सहित हैं । इन एकेन्द्रिय जीवो के दो प्रकार है १) सूक्ष्म एकेन्द्रिय और २) बादर एकेन्द्रिय

१) सूक्ष्म जीव चौद राजलोक में ठूंस ठूंस कर भरे हुए है । पर्वतादि को भेद कर जो आवागमन कर सकते हैं, किसी वस्तु से छेद नहीं सकते, भेद नहीं सकते, अग्नि से जल नहीं सकते, अपनी चमडे की आंखो से देख नहीं सकते, मनुष्य के कोई उपयोग में आते नहीं इनकी द्रव्य हिंसा संभव नहीं । भावहिंसा से जीव कर्म बांध सकते हैं । सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से सूक्ष्मता को पाये हुये एकेन्द्रिय जीव हैं ।

२) चर्मचक्षु से देख सकें ऐसे बादर नामकर्म के उदयवाले बादर जीव है । ये स्वयं किसी वस्तु को छेद-भेद नहीं सकते परंतु अन्य वस्तु से इनका छेदन भेदन हो सकता है, अग्नि से जला सकते हैं ऐसे होते हैं । मनुष्य तथा दूसरे प्राणीयों के उपयोग में आते हैं, ऐसे अेकेन्द्रिय जीव बादर एकेन्द्रिय जीव हैं ।

३) बेइन्द्रिय (द्वीन्द्रिय) जीव - स्पर्श और रसनेन्द्रिय सहित जीव द्वीन्द्रिय है । उदा. शंख, इल्लि, कृमि

४) तेइन्द्रिय जीव - स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय इन तीन इन्द्रियो सहित जीव तेइन्द्रिय है । उदा. उधई, जू, खटमल, चींटा, चीटीं... ।

५) चतुरिन्द्रिय जीव - स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय इन चार इन्द्रियो सहित

जीव चतुरिन्द्रिय है । उदा. मक्खी, मच्छर, पतंगा....

६) पंचेन्द्रिय जीव - स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय तथा श्रोतेन्द्रिय इन पाँच इन्द्रियो सहित जीव पंचेन्द्रिय है ।

ये पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकार के है ।

१) संज्ञि २) असंज्ञि

७) संज्ञि पंचेन्द्रिय जीव - मन संज्ञा सहित जीव वे संज्ञि है । मन सहित पंचेन्द्रिय जीव वे संज्ञि पंचेन्द्रिय जीव है ।

८) असंज्ञि पंचेन्द्रिय जीव - मन संज्ञा बिना के जीव असंज्ञि है । मन संज्ञा रहित पंचेन्द्रिय जीव असंज्ञि पंचेन्द्रिय जीव है ।

इस प्रकार से जीव के सात भेद हुअे । ये प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो-दो भेद मिलकर कुल १४ भेद जीव के होते हैं ।

जिस जीव की जितनी पर्याप्त कही है वह पूर्ण करके फिर मरण प्राप्त करे वह पर्याप्त जीव है ।

जिस जीव की जितनी पर्याप्ति कही है वह पूर्ण किये बगैर मृत्यु पाये वह अपर्याप्त जीव है ।

इस तरह जीवतत्व के चौदह भेद निम्न प्रकार से हैं १) सुक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त २) सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त ३) बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त ४) बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त ५) द्विइन्द्रिय पर्याप्त ६) द्विइन्द्रिय अपर्याप्त ७) तेईन्द्रिय पर्याप्त ८) तेईन्द्रिय अपर्याप्त ९) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त १०) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त ११) संज्ञि पंचेन्द्रिय पर्याप्त १२) संज्ञि पंचेन्द्रिय अपर्याप्त १३) असंज्ञि पंचेन्द्रिय पर्याप्त १४) असंज्ञि पंचेन्द्रिय अपर्याप्त

नाणं च दंसण चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लख्खणं ।।५।।

ज्ञान,दर्शन तो है ही, चारित्र, तप तथा वीर्य और उपयोग ये जीव (आत्मा) के लक्षण है ।

जो गुण जिस वस्तु का कहा गया हो वो गुण उस वस्तु में संपूर्ण रुप से घटित होता हो, परंतु अन्य किसी भी वस्तु में घटित न हो... संभवित न हो वह गुण उस वस्तु का विशेष धर्म है उस वस्तु का लक्षण है।

यहाँ जीव के लक्षण बताते हैं -

१) ज्ञान - ''ज्ञायते परिच्छिद्यतें वस्त्वनेनेति ज्ञानम्''
जिससे वस्तु ज्ञात हो, परिछेदाय वह ज्ञान है ।
वस्तु में दो प्रकार के धर्म (गुण) है - १) सामान्य धर्म २) विशेष धर्म

वस्तु का विशेष धर्म वह ज्ञान है । उसे ही विशेषोपयोग और साकारोपयोग भी कहते हैं । ज्ञान के आठ प्रकार हैं । पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान ।

१) मतिज्ञान २) श्रुतज्ञान ३) अवधिज्ञान ४) मनःपर्यवज्ञान और ५) केवलज्ञान, और तीन अज्ञान १) मतिअज्ञान २) श्रुतअज्ञान ३) अवधिज्ञान याने ही विभंगज्ञान ।

सम्यगदृष्टि का ज्ञान वह ज्ञान है ।
मिथ्यादृष्टि का ज्ञान वह अज्ञान है ।
इन आठ ज्ञान में से कोई भी एक अथवा ज्यादा ज्ञान का कम या ज्यादा अंश प्रत्येक जीव में होता ही है । ज्ञान के बिना जीव नहीं होता । जहाँ जीव... वहाँ ज्ञान... जहाँ ज्ञान वहाँ जीव । जीव है पर ज्ञान नहीं अथवा ज्ञान है पर जीव नहीं ऐसा कभी भी संभव नहीं ।
छद् मस्थ जीव को ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के अनुसार कम ज्यादा ज्ञान होता है । केवलज्ञानी को संपूर्ण ज्ञान होता है ।

२) दर्शन - ''दृश्यते वस्त्वनेन सामान्यरुपेणेति दर्शनम्''
जिससे वस्तु सामान्य रुप से दिखाई दे वो दर्शन ।

दर्शन यह भी जीव का लक्षण है । उपर वस्तु के दो धर्म बताये है, उसमें विशेष धर्म वह ज्ञान और

सामान्य धर्म वह दर्शन है । वस्तु के सामान्य धर्म को जानने की जीव की शक्ति वह दर्शन है । उसे ही सामान्योपयोग अथवा निराकारोपयोग कहते है ।

दर्शन के चार प्रकार है - १) चक्षुदर्शन २) अचक्षुदर्शन ३) अवधिदर्शन और ४) केवल दर्शन

इन चार दर्शन में से कम अधिक अंश में एक भी दर्शन जीव को अवश्य होता है । ज्ञान की तरह दर्शन बिना का जीव होता ही नहीं । छद्मस्थ जीव को अंतर्मुहुर्त तक दर्शन होता है फिर अन्तर्मुहुर्त तक ज्ञान होता है । इस तरह दर्शन-ज्ञान, दर्शन-ज्ञान, दर्शन-ज्ञान चालू रहता है । छद्मस्थ को प्रथम दर्शन फिर ज्ञान होता है । केवली भगवंत को प्रथम केवल-ज्ञान होता है फिर केवल दर्शन होता है । केवलज्ञानी को भी समय समय पर ज्ञान मेंसे दर्शन में तथा दर्शनमें से ज्ञान में सादि अनंत परिवर्तन चालू रहता है ।

३) चारित्र - चारित्र के अलग अलग अर्थ हैं । मूल अर्थ है ''चरन्ति अनिन्दितमनेनेति चारित्रय । जिससे अनिन्दित शुभ आचरण हो वह चारित्र ।

इस चारित्र के सात भेद है - १) सामायिक चारित्र २) छेदोपस्थापन चारित्र ३) परिहार विशुद्धि चारित्र ४) सूक्ष्मसंपराय चारित्र ५) यथाख्यात चारित्र ६) देशविरति चारित्र और ७) सर्वविरति चारित्र.

इन सात चारित्र में से कोई भी चारित्र कम ज्यादा अंश में सभी जीवो में होता है । जीव हो वहाँ चारित्र होता है और चारित्र होता है वहाँ जीव होता है । दूसरे किसी भी द्रव्य में चारित्र नहीं है, इसलिये चारित्र जीव का लक्षण है ।

४. तप - तापयति अष्टप्रकार कर्म इति तपः । आठ प्रकार के कर्म को तपावे वो तप । इच्छा निरोध भावतप है उसके सहायक उपवासादि द्रव्य तप है । बाह्य अथवा द्रव्य तप और अभ्यतंर अथवा भाव तप ये दो मुख्य भेद हैं । प्रत्येक जीव में कम ज्यादा अंश में तप है । तप बिना जीव नहीं - जीव बिना तप नहीं । इसिलीये तप जीव का लक्षण है ।

५) वीर्य - विशेषता से आत्मा को क्रिया में प्रेरे वह वीर्य है । वह योग, उत्साह, पराक्रम, बल शक्ति रुप है । वीर्य के दो प्रकार है १) करणवीर्य २) लब्धि वीर्य १) मन-वचन-काया के आलंबन से प्रवर्त वीर्य वह करण वीर्य और २) आत्मा में शक्तिरुप रहा हुआ वह लब्धि वीर्य, करणवीर्य सर्व जीवो में हिनाधिक प्रमाण में होता ही है । जबकि लब्धिवीर्य वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होता है । वो भी सभी जीवों के पास होता ही है । वीर्य बिना का जीव नहीं इसलिये वीर्य जीव का लक्षण है ।

६) उपयोग - जीव में रही हुई वस्तु के सामान्य और विशेष धर्म को जानने की शक्ति का वापर-व्यापार वह उपयोग कहलाता है । जब ज्ञान शक्ति का उपयोग हो तव वह ज्ञानोपयोग है । उस ज्ञान के आठ प्रकार के कारण ८ प्रकार का है । जबकि दर्शनशक्ति का व्यापार वो दर्शनोपयोग है, ४ प्रकार के दर्शन के कारण दर्शनोपयोग ४ प्रकार का है । इससे उपयोग कुल १२ प्रकार का है । इन बारह में से एक या ज्यादा उपयोग कम ज्यादा प्रमाण में सर्व जीवों में होता है । उपयोग बिना जीव नहीं जीव बिना उपयोग नहीं, इसलिये उपयोग जीव का लक्षण है ।

आहार शरीर इंदिय, पज्जति आण पाण भास मणे ।
चउ पंच पंच छप्पिय, इग विगला सन्नि सन्निणं ।।६।।

आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोश्वास, भाषा और मन ये छः पर्याप्ति है । ये चार, पांच, पांच और छः अनुक्रम से अेकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, असंज्ञि और संज्ञि पंचेन्द्रिय को होती है ।

विश्व के प्रत्येक संसारी आत्मा में शरीर धारण

करके जीवन जीने की शक्ति होती है, परंतु शरीरधारी बनकर जीवन जीने की शक्ति केवल आत्मा द्वारा प्रगट नहीं होती । उसके लिये पुद्गल की सहायता अनिवार्य बनती है । पुद्गल के समुह से प्रगट होती आत्मा की विशेष प्रकार की जीवन शक्ति वह पर्याप्ति कहलाती है । यह पर्याप्ति छः प्रकार की है ।

१) आहार पर्याप्ति - जीव जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ प्रथम आहार ग्रहण करने का काम करता है । जीव जिस शक्ति के द्वारा आहार योग्य पुद्गलों को ग्रहण करे ओर उसे रस-खल रुप में परिणमावे वो आहार पर्याप्ति है । शरीर बनाने के काम में उपयोगी हो वह रस और मल-मूत्रादि बने वह खल जानना । यह पर्याप्ति प्रथम समय में ही पूर्ण होती है ।

२) शरीर पर्याप्ति - आहार के पुदगलों मेंसे बने हुए रस के द्वारा जिस शक्ति से जीव सात धातुमय शरीररुप में परिणमावे वह शरीर पर्याप्ति ।

३) इन्द्रिय पर्याप्ति - सात धातु रुप में परिणमित रस, वो जिस जीव को जितनी द्रव्य इन्द्रिय होती हैं उन्हें उतनी द्रव्य इन्द्रियरुप परिणमावे वह शक्ति विशेष इन्द्रिय पर्याप्ति है । यह प्रथम तीन पर्याप्ति पूर्ण करे बगैर कोई जीव मरता नहीं ।

४) श्वासोश्वास पर्याप्ति - उपरोक्त तीन पर्याप्ति पूर्ण करने के पश्चात श्वासोश्वास योग्य वर्गणा के दलिक लेकर श्वासोश्वासरुप परिणमित कर श्वास लेकर छोडने की जो शक्ति विशेष वो श्वासोश्वास पर्याप्ति है । जीव जब श्वासोश्वास क्रिया में समर्थ होता है तब इस पर्याप्ति की समाप्ति होती है ।

५) भाषा पर्याप्ति - भाषा योग्य वर्गणा के पुद्गल लेकर भाषा रुप रुपांतरित कर ग्रहण करके छोडने की जो शक्ति विशेष वह भाषा पर्याप्ति है । जीव जब वचनक्रिया में समर्थ होता है तब इस पर्याप्ति की सामप्ति होती है ।

६) मन पर्याप्ति - मन योग्य मनो वर्गणा के पुद्गल लेकर मन रुप में रुपांतरित कर ग्रहणकरके छोडने की शक्ति विशेष वह मन पर्याप्ति है । जीव जब विषय चिंतन में समर्थ होता है, तब इस पर्याप्ति की समाप्ति होती है ।

प्राण

पणिंदियति बलुसा, साऊ दस पाण चउ छ सग अट्ठ ।
इगदुति चउरिंदीणं, असन्नि सन्नीण नव दसय ।।७।।

पांच इन्द्रिय, तीन बल, श्वोसोश्वास और आयुष्य ये दस प्राण है । ये चार, छः, सात और आठ अनुक्रम से अेकेन्दिय, बेईन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय तथा असंज्ञि - संज्ञि पंचेन्द्रिय को नौ व दस प्राण होते है ।

''प्रणिति जीवति अनेनेति प्राणः ''

जीव जिससे जीता है वो प्राण कहलाता है ।

''प्राणान धारयति इति प्राणा''

प्राणों को धारण करे वह प्राणी है ।

प्राण दो प्रकार के है - १) द्रव्य प्राण और २) भाव प्राण द्रव्य प्राण संसारी जीवों को और भाव प्राण सिद्ध के जीवों को है । द्रव्य प्राण दस हैं - पांच इन्द्रिय + तीन बल + श्वोसोश्वास + आयुष्य । भाव प्राण चार हैं - दर्शन + ज्ञान + चारित्र + वीर्य ।

किस जीव को कितने प्राण ?

एकेन्द्रिय - एकेन्द्रिय के पास एक इन्द्रिय (स्पर्शेन्द्रिय) है, मन-वचन नहीं है, इससे एक ही कायबल तथा श्वासोश्वास और आयुष्य मिल कर ४ प्राण है ।

द्विइन्द्रिय - स्पर्शेन्द्रिय के साथ रसनेन्द्रिय - दो इन्द्रिय हैं, कायबल के साथ वचनबल है तथा श्वासोश्वास और आयुष्य होने से ६ प्राण है ।

तेइन्द्रिय - स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय के साथ घ्राणेन्द्रिय जुडने से ३ इन्द्रिय, दो बल, श्वोसोश्वास और आयुष्य इस तरह कुल ७ प्राण है ।

चतुरिन्द्रिय - स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय के साथ चक्षुरिन्द्रिय जुडने से ४ इन्द्रिय, दो बल, श्वासोश्वास और आयुष्य इस तरह ८ प्राण होते है ।

पंचेन्द्रिय - दो प्रकार है - १) असंज्ञि २) संज्ञि

असंज्ञि पंचेन्द्रिय को ५ इन्द्रिय, दो बल, श्वासोश्वास और आयुष्य इस तरह कुल ९ प्राण होते है । जबकि संज्ञि पंचेन्द्रिय को मन होने से मनोबल के साथ १० प्राण होते हैं । अपर्याप्त जीवों को जघन्य से ३ और उत्कृष्ट से ७ प्राण होते है ।

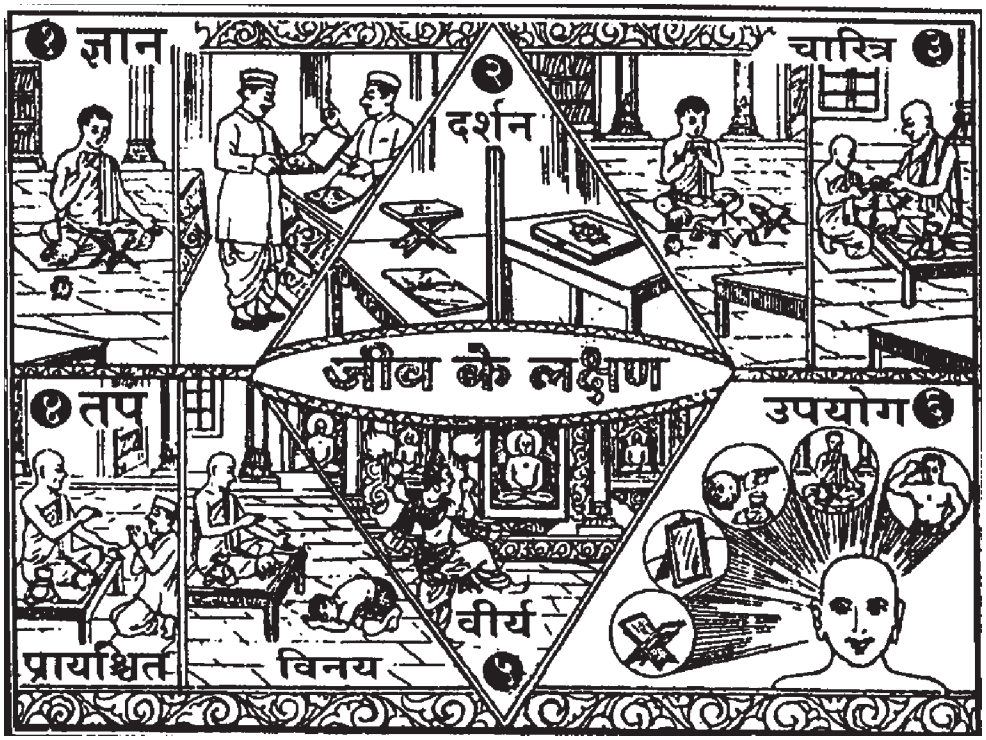

तीर्थंकरो की जीवन यात्रा

(श्री ऋषभदेव चरित्र)

अचल गच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणसागरसूरि म.सा.

प्रभुश्री ऋषभदेवने दीक्षा का स्वीकार किया ।
प्रभु साधु बने ! घोर अभिग्रहधारी बने....

प्रभु गांव गांव विहार करने लगे.....

उस समय लोग बहुत धनवान थे पर भिक्षा किसे कहते है यह जानते नहीं थे । अतः विधीयुक्त भिक्षा न मिलने के कारण भगवान आहार पानी के बिनाही विचरण कर रहे थे । परंतु उनके साथ चार हजार पुरुषोंने दिक्षा ली थी वे आहार-पानी बिना रह नहीं पा रहे थे । अतः उन्होने प्रभुसे आहार पानी की विधि पूछी । प्रभु तो दीक्षा के समय से ही मौनव्रत धारी थे । अतः वे मौन ही रहे । फिर वे सब साधु प्रभु का स्मरण करते हुए गंगा के किनारे ही वन में रहने लगे । वहाँ वृक्षादि के गिरे हुए पत्ते-पुष्प-फल एवं कंद का आहार करनेवाले जटाधारी साधु बने ।

विद्याधर राज्य का प्रारंभ

नमि और विनमि नाम के कच्छ और महाकच्छ के दो पुत्र थे । जब प्रभुने अपने पुत्रों को राज्य बाँट दिया था एवं दिक्षा ली थी तब नमि और विनमि देशांतर गये थे । देशांतर से आये तो प्रभु के पास उपस्थित हुए । प्रभु के पास राज्य की माँग करने लगे । पर प्रभु तो मौनही रहते थे । अतः वे कायोत्सर्ग ध्यान में निमग्न प्रभु के आसपास रहनेवाली धूली को कमलपत्रों में पानी लाकर सिंचा करते थे जिससे रज समा देते थे ।

प्रभु के आगे पुष्पोंका ढेर लगाकर भक्ति करते थे । प्रभु को वंदन करने के लिये आये हुए धरणेन्द्र ने नमि-विनमि की भक्ति देखकर प्रसन्न होकर कहा कि '' मैं ही तुम्हे राज्य सौंपता हूं ''। ऐसा कहकर उन्हे अडतालीस हजार विद्याएं दी एवं गौरी, गांधारी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति नामकी चार महाविद्याऐं पाठसिद्ध दी, और कहा ''तुम अब विद्याओं से विद्याधरों की समृद्धि से संपन्न हुए हो, अतः अपने स्वजन परिवार सहित वैताढय पर्वतपर जाओ । वहाँ दक्षिण और उत्तर श्रेणि में नगर बसाओ और वहाँ राज्य करो ।''

वैताढय की दक्षिण श्रेणि में नमि एवं उत्तर श्रेणिमें विनमि विद्याओं को साधकर राज्य बसाकर रहने और राज्य करने लगे ।

सुपात्र दान

दीक्षा के दुसरे दिन तिसरे प्रहर में प्रभु ने छठ्ठ तप के पारणे हेतु भिक्षाटन किया । लोग बहुत भक्तिवाले थे परंतु अज्ञानी थे । अतः प्रभु को क्या चाहिये क्या नहीं चलेगा, यह नहीं जानने से प्रभु के समक्ष हाथी,घोडे, कन्यायें, सुवर्ण आदि रखने लगे । पर निर्दोष आहार पानी की विनंती किसीने न की । भिक्षा समय बीत जाने पर प्रभु पुनः ध्यानस्थ हो जाते थे ।

इस तरह एक वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत हो गया । प्रभु के उपवास चालू ही थे । विहार करते करते प्रभु हस्तिनापुर पधारे । वहाँ पर बाहुबली के पुत्र सोमयशा के पुत्र श्रेयांसकुमार ने सपने में स्वयंको मेरु पर्वतको क्षीरोदधि के नीर से नहलाते देखा । सुबुद्धि सेठ और सोमयशा राजा ने भी सपना देखा । प्रभु के दर्शन से श्रेयांस को जातिस्मरण ज्ञान हुआ । प्रभु के साथ के पूर्वभवों के संबंध याद आये । दानकी विधी समझी । उसी समय ताजे इक्षुरस के बहुत सारे घडे किसी ने श्रेयांस को भेंट किये । उसे कल्पनीय - निर्दोष जानकर श्रेयांस ने प्रभु को विनंती की और प्रभुने अपने करकमलों में रस ग्रहण कर पारणा किया

। देवताओंने दिव्य वृष्टि की । तभीसे सुपात्रदान की विधि प्रारंभ हुई ।

धर्मचक्र तीर्थ

किसी समय संध्यासमय बहली देश के तक्षशिला नगरी के उद्यान में प्रभु काउसग्ग ध्यान में रहे । उद्यानपालक ने तुरंत प्रभुके आगमन का बाहुबली को समाचार दिये । वह सुनकर आनंदित हुए बाहुबलीने सोचा प्रातः मेरी सकल सामग्री सहित प्रभुको वंदन करने जाउंगा । इसी उत्साह में रात्री बिताकर प्रातः परिवारजन, नगरजनोंसहित एवं चतुरंगिणी सेना के साथ प्रभु के वंदन के लिये उद्यान में आये, परंतु प्रभु तो सबेरे काउसग्ग पालकर विहार कर गये थे । अतः बाहुबलि को अपने प्रमाद के लिये बहुत पश्चाताप हुआ । फिर बाहुबलिने प्रभुके पदचिन्हानुसार अपना हाथी दौडाया परंतु प्रभु के दर्शन हुए नहीं पर दूर से सुवर्ण समान झलकती प्रभुकी कांति देखी अतः वहाँ खडे रहकर प्रभुको पाँच बार आवाज दी । तभीसे लोगों में बांग पुकारने की प्रथा चली ।

प्रभु जहाँ काउसग्ग ध्यान में खडे थे, वहाँपर बाहुबलीने एक रत्नमय पीठिका बंधायी । उसपर प्रभुकी पादुका प्रतिष्ठित की और वहाँपर 'धर्मचक्र' तीर्थ की स्थापना की । अतः धर्मचक्र तीर्थ प्रवर्तमान हुआ ।

केवलज्ञान - केवल दर्शन

प्रभु सालभर पालथी मारकर बैठे भी नहीं तो सोने की बात कहाँ ? संपूर्ण ममता रहित, सतत आत्मध्यान में लीन जो कोई उपसर्ग हुए उन्हें समताभाव से सहन करते करते एक हजार वर्ष पूर्ण हुए । माघ वदि अेकादशी के दिन प्रातः पुरिमताल नगरी के बहार, शकटमुख नामक उद्यान में वटवृक्ष के नीचे, जलपान रहित अठ्ठम तप सहित शुक्लध्यान के मध्य में रहे हुए ऐसे प्रभुको अनंत ऐसा केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ । फल स्वरुप प्रभु सब जीवोंके सब भावोंको जानते-देखते आत्मरमणता में रहने लगे ।

इंद्रो के आसन कंपायमान हुए । देव-देवियों के साथ आकर इन्द्र ने महिमा की । तीन गढ सहित समवशरण की रचना हुई । आठ महाप्रातिहार्य प्रकट हुए । चार मूल अतिशय, कर्मक्षयसे ग्यारह एवं देवोंने किये हुए उन्नीस ऐसे कुल चौत्तीस अतिशय हुए ।

प्रभु समवशरण में पूर्वद्वार से प्रविष्ट हुए । चैत्य वृक्षको प्रदक्षिणा दी और सिंहासनपर बिराजमान हुए । देशना फरमाई । संवेग-निर्वेद युक्त देशना सुनकर भरत महाराज के पुत्र ऋषभसेन को वैराग्य हुआ । पाँच सौ बंधु और सातसौ पुत्रादिक के साथ दीक्षा हुई । प्रभुने तीर्थ की स्थापना की । ऋषभसेन प्रथम गणधर हुए । ब्राम्ही प्रथम प्रवर्तिनी महत्तरा हुई । भरत प्रथम श्रावक हुए, सुंदरी प्रथम श्राविका बनी ।

हरेक तीर्थंकारों के प्रथम समवशरण में प्रभु के शासन की सुरक्षा के लिये, चतुर्विध श्री संघको मोक्षमार्ग की साधना में सहायक बनने के लिये यक्ष-यक्षिणीकी स्थापना होती है । श्री ऋषभदेव प्रभुके शासन की रक्षा के लिये गौमुख यक्ष और चक्रेश्वरी यक्षिणीकी स्थापना हुई । तिरासीलाख पूर्व गृहस्थावसमां रहकर एवं अेक हजार वर्ष छद्मस्थावस्थामें रहकर, अेक हजार वर्ष कम ऐसे अेक लाख पूर्व वर्ष केवलीअवस्थामें रहकर, अेक पूर्ण लाख पूर्व चारित्र पर्याय पालकर इसतरह सब मिलाकर चौर्यांसी लाख पूर्व संपूर्ण आयुष्य भोगकर वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्रकर्म ऐसे चारो भवोपग्रही कर्मोंका नाश होने से इस अवसर्पिणीके सुषम-दुषम नामक तिसरे आरेका बहुत समय व्यतीत होने पर पोषवदि तेरस को अष्टापद नामक पर्वत के शिखरपर दस हजार साधुओंके साथ जलबिना चौदहभक्त के

त्याग से यानी चोविहारा छ उपवास से प्रातः समय पद्मासन में स्थित श्री ऋषभदेव प्रभु निर्वाण को प्राप्त हुए । संसार से मुक्ती प्राप्त की । यावत् संसार के समस्त दुःखोसे मुक्त हुए । शाश्वत सुख पाया ।

उस समय प्रभु के साथ एकही समय में बाहुबलि आदि प्रभुके निन्यानवे पुत्रमुनि एवं भरतराजा के आठ पुत्र यानि प्रभुके पौत्रमुनि कुल मिलाकर उत्कृष्ट अवगाहना वाले अेकसो आठ सिद्ध हुए । उसी दिन अन्य दस हजार मुनि मोक्ष गये वे भी प्रभु के साथ मोक्ष गये ऐसा कहा जाता है ।

उस समय आसनकंप से सौधर्मेन्द्र अवधिज्ञानसे प्रभु श्री ऋषभदेवका निर्वाण हुआ ऐसा जान पाये । वे आपनी अग्रमहिषिया, देव एवं लोकपालों के साथ अष्टापद तीर्थ पर जहाँ प्रभुका शरीर था उस स्थानपर आते है । तीन प्रदक्षिणा देकर आनंदहीन अश्रूपूरित आँखो से प्रभु के शरीर के पास खडे रहे । तब आसनकंप से प्रभुका निर्वाण जान इशानेन्द्र आदि सभी इंद्र अपने अपने परिवार के साथ वहाँ उपस्थित हुए । फिर सौधर्मेन्द्र ने भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक देवोंद्वारा, नंदनवन से गोशीर्ष चंदन काष्ठ मंगवाये । एक तीर्थंकर के शरीर के लिये, एक गणधरों के शरीर के लिये और एक मुनिवरों के लिये ऐसी तीन चितायें बनवायी । आभियोगिक देवों द्वारा लाये हुअे क्षीर समुद्रके जलसे इंद्र ने प्रभुके शरीर को स्नान करवाया । गोशीर्ष चंदन का लेप किया । हंस लक्षण वस्त्र लपेटा एवं सब अलंकारों से सुशोभित किया ।

उसी तरह गणधर एवं मुनिवरों के शरीरोंको अन्य देवोंने स्नान कराकर अलंकृत किया । तत्पश्चात् इंद्र ने प्रभु के शरीर को चिता पर स्थापित किया । अन्य देवोंने दुसरी दो चिताओं पर गणधर एवं मुनिवरों के शरीर को स्थापित किया । आनंदरहित ऐसे अग्निकुमार देवोंने अग्नि प्रज्वलित की । वायुकुमार देवों ने वायु विकुर्वित किया, अन्य देवोंने चित्ता में कालागुरु तथा चंदन आदि के काष्ट डाले । घी के घडेसे सिंचन किया ।

अंत में जब सभी शरीर भस्मीभूत हो गये तब इंद्रकी आज्ञा से मेघकुमार देवोंने तीनों चिताओं को जल से सिंचित किया । सौधर्मेन्द्र ने प्रभुकी उपरकी दाहिनी दाढा ली, इशानेन्द्र ने उपरकी बायीं दाढा ली । चमरेन्द्र ने नीचे की दाहिनी दादा एवं बलीन्द्र ने नीचे की बांयी दाढा ली । शेष देवोंने अपने रिवाजानुसार शेष अस्थियाँ ली ।

फिर सौदर्मेन्द्र ने तीर्थंकर -गणधर - मुनिवरों के ऐसे तीन स्तूप बनवाये । तत्पश्चात् सौधर्मेन्द्र आदि सभी इंद्र देवोंसहित नंदीश्वर द्वीप गये । वहाँ अठ्ठाई महोत्सव कर अपने अपने स्थानपर गये । अपने वहाँ वज्रमय पेटिका में जिनदाढ़ाओं का सदा गंधमालादिसे पूजन करते हैं ।

जयणा

जयणा श्रावक की कुलदेवी है ।

सुंदर जयणा पालन के लिये जीव विचार का ज्ञान अनिवार्य है । यदि जीव-विचार जानने के पश्चात भी अपने जीवन में जयणा न आवे तो अपना ज्ञान निष्फल होता है ।

जयणा पूर्वक चलने से... जयणा पूर्वक बैठने से... जयणा पूर्वक खडे रहने से जयणापूर्वक नींद लेने से.... जयणा पूर्वक खाने से तथा जयणा पूर्वक बोलने से पाप कर्म का बंध कभी भी होता नहीं ।

चलिये, संसार में कदम कदम पर सावधान बनकर... प्रत्येक क्रिया जयणापूर्वक करने से हम अपनी आत्मा को अशुभ कर्म से दूर रख कर सद्गति से सिध्दगति की तरफ प्रयाण करें ।